पउमचरियं के हिन्दी अनुवाद में कतिपय त्रुटियाँ

(पूर्वार्धमात्र)

विश्वनाथ पाठक

प्राध्यापक श्री शान्तिलाल म० वोरा ने प्राचीन जैन रामायण पउमचरियं का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर साहित्य की श्लाघ्य सेवा की है। प्राकृत ग्रन्थ परिषद् से मूल प्राकृत-पाठ के साथ प्रकाशित उक्त अनुवाद में अनेक स्थलों पर कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं। अतः उन त्रुटियों का मार्जन आवश्यक है। प्रस्तुत निबन्ध में त्रुटिग्रस्त स्थलों के विवेचन के साथ-साथ संगत अर्थ-संघटन का भी प्रयास किया गया है। आशा है सुधीजन मेरे सुझावों का समुचित मूल्यांकन करेंगे।

सर्वप्रथम हम राक्षसवंशाधिकार शीर्षक प्रकरण की निम्नलिखित गाथा पर विचार करते हैं—

आवत्तवियडमेहा उक्कडफुडदुग्गहा महाभागा।
तवणायवलियरयणा कया य रविरक्खससुएहिं ॥ ५।२४८

उक्त संस्करण में इसका अनुवाद इस प्रकार दिया गया है—"आवर्त विकट नामक मेघ से युक्त विस्तीर्ण विशद एवं शत्रुओं के द्वारा दुर्ग्रह तथा किनारों से टकराने वाली पानी की लहरों में बह कर आये रत्नों से व्याप्त द्वीपों में रविराक्षस के पुत्रों ने भी सन्निवेश बसाये।" इस अनुवाद को तारकांकित कर नीचे यह पादटिप्पणी दी गई है—"मूल में 'तवणायवलियरयणा' पाठ है। इस पद का अर्थ बहुत खींच-तान करने पर भी बराबर नहीं बैठता। रविषेण ने मूल में जो भी पाठ रहा हो उसका अनुवाद 'तटतोयावलीरत्न द्वीपाः' किया है और वह सन्दर्भ के अनुरूप भी प्रतीत होता है। अतः उसी का अनुवाद यहाँ दिया गया है।' इस टिप्पणी के अनुसार अनुवादक ने मूलपाठ को ही उपेक्षित कर दिया है। उन्होंने केवल रविषेण के अनुवाद का अनुवाद देकर संन्तोष कर लिया है। अतः इस गाथा के खोये हुए वास्तविक अर्थ पर सम्यक् विचार आवश्यक है।

हिन्दी अनुवादक ने आवत्तवियडमेहा' का अर्थ 'आवर्तविकट नामक मेघ से युक्त' किया है। अब प्रश्न यह है कि यदि 'आवत्तवियडमेह' का अर्थ 'आवर्त विकट नामक मेघ' है तो अनुवादक को उसी पर रुक जाना चाहिये था। 'आवर्तविकट नामक मेघ से युक्त' यह अर्थ कहाँ से आ गया। देवदत्त कहने पर देवदत्त से युक्त अर्थ व्यवहार में कहीं नहीं आता है। साथ ही साथ यदि 'आवर्त विकट' संज्ञा या विशेष्य है तब तो प्रस्तुत पद्य में सन्दर्भ लभ्य सन्निवेश पद का अभाव होने के कारण अन्य पद उसी के विशेषण हो जायेंगे। अतः उक्त अर्थ अविश्वसनीय है।

'आवत्तवियडमेहा' का सीधा सा अर्थ इस प्रकार है—'आसमन्ताद् वृत्ता उत्पन्नाः विकटाः सुन्दराः मेघाः घनाः येषु' अर्थात् जिनमें चारों ओर सुन्दर मेघ उत्पन्न होते रहते थे या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मँडराते रहते थे। 'उक्कडफुडदुग्गहा' की व्याख्या इस प्रकार होगी—उत्कटैः प्रबलैरर्थाद् बलवद्भिः शत्रुभिः स्फुटतया दुर्ग्रहाः स्पष्टदुर्जेयाः अर्थात् प्रबल शत्रुओं के द्वारा कठिनाई से जीतने योग्य। 'तवणायवलियरयणा' इस पद में 'लिय' शब्द के अर्थ पर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। इस शब्द का प्रयोग गाथासप्तशती की निम्नलिखित गाथा में उपलब्ध होता है—

थोरंसुएहिं रुण्णं सवत्तिवग्गेण पुप्फवइआए।
भुअसिहरं पइणो पेच्छि ऊण सिरलग्ग तुप्पलिअं ॥५२८॥

टीकाकार गङ्गाधर ने 'लिअ' का अर्थ इस प्रकार दिया है—"तुप्पं वर्णघृतं तेन लिप्तं तुप्पलिअं।" 'प्राकृतसर्वस्व' और 'पाइअसद्दमहण्णव' भी इस अर्थ का समर्थन करते हैं। अतः 'तवणायवलियरयणा' की संस्कृत छाया 'तपनातपलिप्तरत्नाः' होगा, इसकी व्याख्या इस प्रकार होगी—

'तपनस्य सूर्यस्य आतपेन लिप्तानि व्याप्तानि अनुरञ्जितानि वा रत्नानि येषु' अर्थात् जिनमें सूर्य के प्रकाश से रत्न अनुरंजित होते रहते थे या चमकते रहते थे। इस सम्पूर्ण गाथा का अनुवाद यह होना चाहिये—

रविराक्षस के पुत्रों ने भी ऐसे सन्निवेश बसाये जिन में चारों ओर सुन्दर मेघ उत्पन्न होते रहते थे (या छाये रहते थे) जो प्रबल शत्रुओं के द्वारा स्पष्टतया दुर्ग्राह्य थे और जिन में सूर्य की किरणों से रत्न चमकते रहते थे।

'यदि तवणायवलियरयणां—इस पाठ को अशुद्ध मानें और इसके स्थान पर 'तवणीयवलियरयणा'—यह पाठ स्वीकार करें तो व्याख्या इस प्रकार करनी पड़ेगी—

'तपनीयेषु सुवर्णेषु वलितानि खचितानि रत्नानि येषु। अर्थात् जिन में सुवर्णों के भीतर रत्न जड़े थे।

'दशमुखपुरी प्रवेश' नामक उद्देश में यह गाथा द्रष्टव्य है—

अह रक्खसाण सेन्नं चक्कावत्तं व भामियं सहसा।
जक्खभडेसु समत्थं दिट्ठं चिय दहमुहेण रणे ॥ ८।९९

इसका अनुवाद इस प्रकार किया गया है—

"इसके अनन्तर सहसा अपने सैन्य को चक्र की भाँति घुमाकर दशमुख उसे रण भूमि में यक्ष सुभटों के समक्ष ले आया।" यह अर्थ ठीक नहीं है क्योंकि मूल पाठ में देखना' (दिट्ठं) क्रिया प्रयुक्त है 'ले आना' नहीं। प्रसंगानुसार इसमें यक्षों के द्वारा राक्षसवाहिनी के पीड़ित हो जाने का वर्णन है। अतः इस गाथा का उपयुक्त अर्थ यह हो सकता है—

अन्वय—अह दहमुहभडेण रणे जक्खभडेसु समत्थं चिय रक्खसाण सेन्नं, चक्कावत्तं व सहसा भामियं दिट्ठं। यहाँ 'जक्खभडेसु' में विद्यमान सप्तमी, तृतीया के अर्थ में प्रयुक्त है—

द्वितीयातृतीययोः सप्तमी—हैमशब्दानुशासन ८।३।१३५

अब सम्पूर्ण गाथा का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'इसके पश्चात् युद्ध में वीर दशमुख (रावण) ने यक्षभटों के द्वारा चक्र की भाँति घुमायी गई सम्पूर्ण राक्षसों की सेना को देखा।

रावण यज्ञ करते हुये मरुत से पूछता है—'तुमने कौन-सा कार्य आरम्भ किया है ? नाना प्रकार के पशु किस लिये बँधे हैं ? ये सभी बाह्मण यहाँ किसलिये आये हैं ? इसके अनन्तर यह गाथा आती है—

संवत्तएण भणिओ विप्पेण किं न याणसे जन्नं।
मरुय नरिन्देण कयं परलोयत्थे महाधम्मं ॥११।७१

इसका अनुवाद इस प्रकार किया गया है—

"यज्ञ का संचालन करने वाले ब्राह्मण ने कहा कि क्या तुम नहीं जानते कि मरुत राजा ने परलोक के लिये महान् धर्मप्रदायी ऐसा यह यज्ञ शुरू किया है।"

यहाँ 'संवत्तअ' का अर्थ 'यज्ञ का संचालन करने वाला' नहीं है। मरुत-यज्ञध्वंस का प्रकरण वाल्मीकि-कृत रामायण में भी है। उत्तरकाण्ड के अट्ठारहवें सर्ग के अनुसार मरुत का उक्त यज्ञ बृहस्पति के भाई संवर्त ने कराया था। इस पुराण-प्रसिद्ध घटना का वर्णन रामायण में इस प्रकार है—

संवर्तो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षाद् भ्राता बृहस्पतेः।
याजयामास धर्मज्ञः सर्वदेव गणैर्वृतः ॥ वा० रा० उ० का० १८।३

यज्ञविध्वंसक रावण से युद्ध करने के लिये समुद्यत मरुत को संवर्त ने मना कर दिया था—

रणाय निर्ययौ क्रुद्धः संवर्तो मार्गमावृणोत्।
सोऽब्रवीत् स्नेहसंयुक्तं मरुतं तं महानृषिः ॥ १८।१५

महाभारत के 'आश्वमेधिक पर्व' में भी संवर्त के द्वारा मरुत का यज्ञ सम्पन्न कराये जाने का सविस्तार वर्णन है। अतः प्रस्तुत गाथा में प्रयुक्त 'संवत्तअ' शब्द वाल्मीकि कृत रामायण के इसी प्रसंग से सम्बद्ध बृहस्पति के भाई संवर्त का वाचक है। **'संवट्टएण** भणिओ विप्पेण' का अर्थ होगा—संवर्तक नामक ब्राह्मण के द्वारा कहा गया।

'मनोरमा परिणयन प्रकरण' में कहा गया है कि जब रावण ने अपनी पुत्री मनोरमा के विवाह का विचार किया तब मन्त्रियों ने मथुरा के राजा हरिवाहन के पुत्र मधुकुमार को कन्या देने का प्रस्ताव रखा। इसी बीच संयोगवश हरिवाहन अपने पुत्र के साथ रावण-सभा में आ पहुँचा। रावण मधुकुमार को देखकर सन्तुष्ट हो गया। इसके पश्चात् आने वाली यह गाथा देखिये—

हरिवाहणस्स मंती भणइ तओ इय पहु निसामेहि।
एयस्स सूलरयणं दिन्नं असुरेण तुट्ठेणं ॥ १२।६

इस गाथा का अनुवाद इस प्रकार दिया गया है—"तब हरिवाहन को मन्त्रियों ने इस प्रकार कहा—हे प्रभो ! आप सुनें। तुष्ट असुर रावण ने इस मधुकुमार को एक शूल-रत्न दिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है।" यहाँ असुर का अर्थ रावण किया गया है और कहा गया है कि असुर अर्थात् रावण ने मधुकुमार को शूल-रत्न दिया था। पुनः मधुकुमार-पूर्वभव प्रकरण के प्रारम्भ में आनेवाली गाथा इस प्रकार है—

एयन्तरम्मि पुच्छइ गणनाहं सेणिओ कयपणामो।
दिन्नं तिसूलरयणं केण निमित्तेण असुरेणं ॥१२।९

इसके अनुवाद में भी असुर शब्द का अर्थ रावण दिया गया है, अनुवाद द्रष्टव्य है—

"इसके पश्चात् श्रेणिक ने प्रणाम करके गणनाथ गौतम से पूछा कि असुर रावण ने त्रिशूल-रत्न क्यों दिया था।"

अब विचारणीय यह है कि क्या वास्तव में रावण ने मधुकुमार को त्रिशूल दिया था? इस प्रश्न का उत्तर 'मधुकुमार पूर्वभव' प्रकरण की निम्नलिखित कथा में विद्यमान है-

'प्रभव और सुमित्र दो मित्र थे। सुमित्र की पत्नी को देखकर प्रभव मोहित हो गया। यह बात जानने पर सुमित्र ने अपनी पत्नी वनमाला को प्रभव के घर भेज दिया। इस घटना से प्रभावित होकर प्रभव ने उसे लौटा दिया तथा ग्लानिवश कृपाण से अपना शिर काटने का प्रयत्न किया, परन्तु उसी समय वहीं छिपे सुमित्र ने हाथ पकड़ लिया। समझा-बुझाकर उपशान्त किया। कालान्तर में सुमित्र ने प्रव्रज्या-ग्रहण कर लिया और वह मर कर ईशानकल्पवासी देव हुआ। वहाँ से च्युत होकर हरिवाहन-पुत्र मधुकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ। उधर मिथ्यात्व-मोहित-मति प्रभव मरकर भवप्रवाह में बहता हुआ अन्त में भवनपति चमर के रूप में उत्पन्न हुआ। चमर ने अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव के मित्र सुमित्र को मधु-कुमार के शरीर में पहचान लिया और पूर्वोपकार के बदले उसे त्रिशूलरत्न प्रदान किया। इसका वर्णन उसी प्रकरण में इस प्रकार आया है—

काऊण समणेधम्मं सणियाणं तत्थ चेव कालगओ।
जाओ भवणाहिवई चमर कुमारो महिड्ढीओ ॥ १२।३३
अवहिविसएण मित्तं नाऊण पुराकयं च उवयारं।
महुरायस्स य गन्तुं तिसूलरयणं पणामेइ ॥ १२।३४

आश्चर्य तो यह है कि उसी प्रकरण में शूल-प्राप्ति की पूरी कथा का स्पष्ट उल्लेख होने पर भी अनुवादक ने चमर के द्वारा मधुकुमार को शूल दिये जाने की घटना पर ध्यान नहीं दिया और रावण द्वारा त्रिशूल दिये जाने की कल्पना कर ली। हो सकता है, उन्होंने असुर को राक्षस का पर्याय समझने की भूल की हो। वस्तुतः दोनों भिन्न-भिन्न जातियाँ हैं। वेदों में असुर शब्द देव-वाचक है। अमरकोश में असुरों और राक्षसों को पृथक्-पृथक् श्रेणियों में स्थान दिया गया है। पाइयसद्दमहण्णव में असुर का अर्थ भवनपति देव लिखा है। पउमचरियं में चमर के लिये भवनपति और असुर दोनों शब्दों के प्रयोग मिलते हैं क्योंकि असुर शब्द देव वाचकहै। कविराज स्वयंभूवदेव ने अपभ्रंश महाकाव्य पउमचरियं में चमर को अमर (देव) कहा है—

१. अनुवादक ने यहाँ 'समण' का अर्थ श्रावक किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जसु चमरें अमरें दिण्णु वरु। सूलाउह सयलाउहपवरु

यहाँ भी चमर के द्वारा मधुकुमार को त्रिशूल प्रदान करने का वर्णन है। अतः 'असुर रावण ने मधुकुमार को शूल रत्न दिया था।' अनुवादक का यह कथन भ्रामक है। इसके अतिरिक्त 'हरिवाहणस्स मंती भणइ, इसका अर्थ भी ठीक नहीं है क्योंकि इस में रावण के मंत्रियों द्वारा हरिवाहन को कोई बात नहीं बतायी गयी है बल्कि हरिवाहन का ही मन्त्री रावण को अपने राजकुमार की योग्यता से परिचित करा रहा है। इस प्रकार उद्धृत गाथा का पूरा अनुवाद अशुद्ध है, अतः इसका संशोधन होना चाहिये।

वज्रकर्ण उपाख्यान में लिखा है कि राम और लक्ष्मण क्रमशः भ्रमण करते हुये एक तापसाश्रम में पहुँचे। आश्रम का वर्णन इस प्रकार है—

नाणासंगहियफलं अकिट्ठधण्णेण रुद्धपहमग्गं।
उम्बरफणसवडाणं समिहासंघायकयपुंजं ॥ ३३।२

इसका अनुवाद यों है—"वह आश्रम नानाविध फलों से परिपूर्ण था। उदुम्बर, पनस और बड़ के पत्तों के न हटाये जाने से उसके रास्ते रुक गये थे और उसमें इकट्ठी की हुई समिधों का ढेर लगा था।" इस अनुवाद में 'अकिट्ठधण्णेणरुद्धपहमग्गं' को उचित रूप से नहीं समझाया गया है। उसका अर्थ यह करना चाहिये—अकृष्टेन धान्येन रुद्धपथमार्गम्। सम्पूर्ण गाथा का शुद्ध अर्थ यह है—

उस आश्रम में नाना प्रकार के फलों का संग्रह था, वहाँ का मार्ग बिना जोते-बोये उगने वाले धान्यों से अवरुद्ध था और वहाँ गूलर, कटहल तथा बरगद की समिधाओं का ढेर लगा था।

तृषाकुल राम के लिये लक्ष्मण अकेले जल लेने जाते हैं। कल्याणमाल नामक राजकुमार उन्हें अपने घर ले जाता है और उनका वृत्तान्त पूछता है। लक्ष्मण कहते हैं—

सो भणइ विप्पउत्तो महभाया चिट्ठए वरुज्जाणे।
जाव न तस्स उदं तं, वच्चामि तओ कहिस्से हं ॥३४।७

इसका अर्थ यों किया गया है—"उसने कहा–मेरे भाई मुझ से वियुक्त होकर उत्तम उद्यान में ठहरे हुये हैं। यावत् उनके पास पानी नहीं है, अतः मैं वह लेकर जाता हूँ। बाद में मैं कहूँगा।" इस अर्थ में 'जाता हूँ' के पहले 'वह लेकर' बाहर से जोड़ना पड़ता है। अतः इसे यों समझें—

'जाव' अव्यय अवधारण या निश्चय के अर्थ में प्रयुक्त है (पाइयसद्दमहण्णव)।

'उदं तं' को एक साथ उदंतं पढ़िये। अब उदंतं की व्याख्या इस प्रकार कीजिये—उत्+अन्तम्=उदन्तम्। उत् का अर्थ समुच्चय है और अन्त का अर्थ है अब निकट। अब उत्तरार्ध का अर्थ इस प्रकार कीजिये—

उसने कहा—मेरे भाई वियुक्त होकर उत्तम उद्यान में ठहरे हैं और मैं निश्चय ही उनके पास जाता हूँ। उसके पश्चात् कहूँगा। ऐसा अर्थ करने पर पूर्वार्ध में स्थित 'विप्पउत्त' शब्द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरार्ध में स्थित 'वच्चामि' क्रिया का हेतु-वाचक हो जायेगा क्योंकि लक्ष्मण के जाते ही विरही और अकेले राम को ढाढ़स मिल जायेगा। 'वियोगी राम के पास जल लेकर जाता हूँ' की अपेक्षा 'प्यासे राम के पास जल लेकर जाता हूँ' यह कहना अधिक सार्थक है क्योंकि पूर्वोक्त अनुवाद में जलानयन को ही प्राधान्य दिया गया है।

मन्दोदरी सीता को रावण से प्रेम करने की सलाह देती हुई कहती है--

जे रामलक्खणा वि हु तुज्झ हिए नियमेव उज्जुत्ता।
तेहिं वि किं कीरइ विज्जापरमेसरे रुट्ठे ॥ ४६।४०

इसका अर्थ देखिये-"जिन राम और लक्ष्मण ने तुम्हारे हृदय में स्थान प्राप्त किया है वे भी विद्याधरेश रावण के रुष्ट होने पर क्या करेंगे ?" 'राम और लक्ष्मण ने तुम्हारे हृदय में स्थान प्राप्त किया है' यह उक्ति नितान्त असंगत है क्योंकि सीता के हृदय में केवल राम ने स्थान प्राप्त किया था, लक्ष्मण ने नहीं। यहाँ हिअ का अर्थ हित है और उज्जुत्त(उद्युक्त)का संलग्न (उत्+युक्त)। अतः गाथा का अर्थ इस प्रकार होना चाहिये-तुम्हारे हित (कल्याण) में निश्चय ही संलग्न जो राम और लक्ष्मण हैं उनके द्वारा भी विद्यापरमेश्वर रावण के रुष्ट होने पर क्या किया जा सकता है।

सीता के वियोग में व्यथित रावण की विक्षिप्तावस्था के वर्णन के तुरन्त बाद ही यह गाथा आती है-

अच्छउ ताव दहमुहो मंतीहिं समं विहीसणो मंतं।
काऊण समाढत्तो भाइसिणेहउज्जय मईओ ॥४६।८५

इसका यह अनुवाद है-"रावण को रहने दो-यह सोचकर भ्रातृस्नेह से उद्यत बुद्धि वाला विभीषण मन्त्रियों से परामर्श करने लगा।" परन्तु यह विभीषण के सोचने का प्रसंग नहीं है। वस्तुतः यहाँ रचनाकार विमल सूरि 'अच्छउ ताव दहमुहो (आस्तां तावद् दशमुखः) कह कर प्रकरणान्तर की अवतारणा कर रहे हैं।

खरदूषण का वध हो जाने के पश्चात् संभिन्न नामक राक्षस-मंत्री की उक्ति का उदाहरण प्रस्तुत है—

सुहकम्मपहावेणं विराहिओ लक्खणस्स संगामे।
सिग्घं च समणुपत्तो वहमाणो बन्धवसिणेहं ॥ ४६।८८
चलिया य इमे सव्वे कइद्धया पवणपुत्तमाईया।
काहिन्ति पक्खवायं ताणं सुग्गीवसन्निहिया ॥ ४६।८९

हिन्दी अनुवाद—"शुभकर्म के उदय से लक्ष्मण के संग्राम में बन्धुजन के स्नेह को धारण करने वाला विराधित शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचा है। सुग्रीव के पास रहने वाले हनुमान् आदि ये सब चंचल कपिध्वज उसका पक्षपात करते हैं।"

संभिन्न की उक्ति में शुभकर्म के साथ कोई सम्बन्धवाचक शब्द न होने के कारण यह अर्थ निकलता है कि राक्षसों के ही शुभ कर्मोदय से विराधित लक्ष्मण के संग्राम में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ पहुँचा है। इस अनुवाद को पढ़ने पर ऐसा नहीं लगता कि खरदूषण का वध हो चुका है क्योंकि 'आ पहुँचा है' यह उल्लेख सूचित करता है कि अभी विराधित लक्ष्मण से मिला ही है, इस मिलन के अनन्तर घटने वाला वृत्तान्त अर्थात् खरदूषण का वध नहीं हुआ है। यहाँ है, क्रिया भ्रम उत्पन्न करती है, उसके स्थान पर 'था' होना चाहिये। प्रथम गाथा को इस प्रकार समझें। अन्वय—बन्धवसिणेहं वहमाणो विराहिओ लक्खणस्स सुहकम्मपहावेण संगामे सिग्घं समणुपत्तो। अर्थात् लक्ष्मण के शुभकर्म के प्रभाव से संग्राम में बान्धवस्नेह को धारण करता हुआ विराधित शीघ्र आ पहुँचा था।

इस अर्थ में यह ध्वनि है कि लक्ष्मण के शुभ कर्मों का उदय हो गया था कि खरदूषण के युद्ध में उनकी सहायता के लिये विराधित आ गया। नहीं तो वे क्या खरदूषण का वध कर लेते!

द्वितीय गाथा में 'काहिन्ति ताणं पक्खवायं' का अर्थ 'उसका पक्षपात करते हैं' असंगत है। 'ताणं 'बहुवचन है और 'काहिन्ति' भविष्यत्कालिक क्रिया है। अतः कथा-सूत्र को सुरक्षित रखने के लिये यह अर्थ होगा—

उनका (अर्थात् राम और लक्ष्मण का) पक्षपात करेंगे। अभी सुग्रीवादि से राम का परिचय ही नहीं हुआ है। आगे सुग्रीवाख्यान पर्व आने वाला है। अतः भविष्यत्कालिक क्रिया के स्थान पर वर्तमानकालिक क्रिया रख देने पर कथा सूत्र में विसंगति उत्पन्न हो जायेगी।

हनुमत्प्रस्थान पर्व की इस गाथा का भी अर्थ ठीक नहीं है—

तत्तो सो सिरि भूई संपत्तो सिरिपुरं रयणचित्तं।
पविसइ हणुयस्स सहा तावेन्तं पेच्छई दूयं॥ ४९।१

अर्थ–"तब वह सिरिभूति रत्नों से विचित्र ऐसे श्रीपुर में पहुँचा और हनुमान की सभा में प्रवेश किया।"

इस अर्थ में 'तावेन्तं पेच्छई दूयं' को छोड़ ही दिया गया है। इस गाथा को समझने के लिये पहले इस प्रकार अन्वय करना होगा–

तत्तो सो संपत्तो सिरि भूई रयणचित्तं सिरिपुरं पविसइ, ताव हणयस्स सहा एन्तं दूयं पेच्छइ।

अर्थात् इसके पश्चात् वह आया हुआ (सम्प्राप्त) श्रीभूति रत्नों से विचित्र श्रीपुर में प्रवेश करता है। तब हनुमान की सभा आते हुये दूत को देखती है।

यहाँ वर्तमान भूतार्थक है। यह अर्थ करने पर स्पष्ट प्रथमान्त सहा शब्द को बलात् द्वितीयार्थक लुप्तविभक्तिक पद बनाने की क्लिष्ट कल्पना नहीं करनी पड़ेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org